ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 450-451
www.allresearchjournal.com
Received: 10-10-2014
Accepted: 17-11-2014

डॉ0 शशिकिरण सिंह
प्रवक्ता–हिन्दी, एन0ए0के0पी0पी0 जी0कालेज, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 शशिकिरण सिंह
प्रवक्ता–हिन्दी, एन0ए0के0पी0पी0 जी0कालेज, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

समाज के सन्दर्भ में साहित्य की भूमिका

डॉ0 शशिकिरण सिंह

प्रस्तावना

'हितं सम्पादयति इति साहित्यम्' अर्थात जिससे हित सम्पादन होता है, वह साहित्य है। साहित्य का जन्म ही मनुष्य मात्र के हित सम्पादन हेतु हुआ है। अतः समाज के सन्दर्भ में साहित्य की भूमिका का निर्धारण अलग से करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। हम सभी जानते हैं कि समाज ही साहित्य और साहित्यकार दोनों की जन्मभूमि ही नहीं कर्मभूमि भी है। अतः उनका आपस में ग्रथित होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

साहित्यकार अनिवार्य रूप से मानव–समाज का ही एक अंग होता है। उसके विचार, उसकी भावनायें, उसके संस्कार–सभी समाज से प्रभावित होते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि समाज ही साहित्यकार को आकार देता है। जो साहित्यकार समाज से जितना अधिक जुडा रहता है, उसका साहित्य उतना ही जीवन्त और प्रामाणिक होता है। यह कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कह है कि 'किसी भी देश का साहित्य वहॉ की जनता कि चित्तवृत्तियों का संचित फल होता है' अर्थात साहित्य अपने समाज के लोगों के विचारों, भावनाओं, संस्कृति–सभी का प्रतिनिधित्व करता है। यह कारण है कि हम दूसरे देश या समाज के लोगों के जीवन के सम्बन्ध में सभी बातों की जानकारी वहॉ के साहित्य के अध्ययन से प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा गया है।

साहित्य मनुष्य के जीवन को निरन्तर ऊपर उठाने का प्रयास करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''साहित्य इसलिए बड़ा नहीं है कि उसमें गद्य, पद्य, छन्द, कथा,–कहानी होती है, बल्कि इसलिए बडा है कि मनुष्य को उत्तम और विशाल बनाता है।'' मनुष्य की भावनाओं का परिष्कार और मन का संस्कार साहित्य के द्वारा होता है। प्रेम चन्द ने साहित्य को जीवन का संस्कार माना है–''साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक तथा सुन्दर बनाता है। दूसरे शब्दों में उसकी बदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका उद्देश्य है।'' साहित्य समाज के हित से अनिवार्यतः जुडा होता है। क्योकि एक तरफ जहॉ वह समाज के कोने–कोने को खंगालकर बुराइयों को सामने लाता है, वहीं वह उनके परिशोधन के पश्चात् समाज में उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा भी चाहता है। समाज की बुराइयों के प्रति हमारी घृणा को जागृत कर उन्हें दूर करने के लिए हमें प्रेरित करता है। हमें अपने–आप को, अपने समाज को देखने–परखने की नई दृष्टि प्रदान करता है। समाज की सडी–गली परम्पराओं और मान्यताओं को समाप्त कर उनके स्थान पर लोकोपयोगी मूल्यों की स्थापना में भी साहित्य का योगदान होता है।मार्क्स के साहित्य ने रूस के इतिहास को बदला तो वाल्टेयर का साहित्य फ्रांस की क्रान्ति का जन्मदाता सिद्ध हुआ। इसी प्रकार महापुरूषों के जीवन–चरित को केन्द्र में रखकर लिख जाने वाला साहित्य सदैव अपने राष्ट्र के नागरिकों ऊँचा उठाने का सद् प्रयास करता है।

आज का युग विज्ञान का युग है। जीवन का हर क्षेत्र वैज्ञानिक उन्नति से प्रभावित हुआ हैं। इसमें कोई शक नहीं कि विज्ञान ने मुनष्य के जीवन को सुखमय बनाने के हर साधन उसे उपलब्ध कराए लेकिन यह भी सत्य है कि सुख के साधनों को एकत्रित करने की इस आपाधापी में मनुष्य की मनुष्यता कहीं खो गई है। दिनकर जी के शब्दों में–

> 'किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
> छूटकर है रह गया, पीछे हृदय का देश।'

मनुष्य दिन पर दिन अधिक तार्किक, युक्तिप्रधान, बौद्विक जीवन का दास बनता जा रहा है,उसका हृदय पक्ष अधिकाधिक उपेक्षित हो रहा है। इस असंतुलन का परिणाम भय, त्रास, कुंठा, अकेलापन, अस्तित्वहीनता,असुरक्षा आदि की व्यक्ति–विघटनकारी स्थितियों के रूप में होता है।

आज सामाजिक संस्थाएँ व्यक्ति के विकास के लिए जितना भी कार्य करती हैं, उसका एक बड़ा भाग साहित्य के द्वारा ही सम्पादित होता है। हमारे जीवन में आया बिखराव साहित्य से हमारे दूर जाने का ही परिणाम है। यदि हमें अपने समाज को, अपने राष्ट्र को विघटनकारी स्थितियों से बचाना है तो साहित्य की ही शरण में जाना पड़ेगा। साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय पक्ष से है और हृदय में विविध भावों का निवास है। मानव–हृदय के ये भाव अनादिकाल से चले आ रहे हैं और युगों–युगों तक इसी प्रकार रहेंगे। अतः इन शाश्वत भावों की अभिव्यक्ति होने के कारण साहित्य के मूल्य भी शाश्वत होते हैं। सत्य, अंहिसा, दया, क्षमा,त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, विश्व–बन्धुत्व, विश्व–शान्ति, मानव–प्रेम, न्याय,समता, सौहार्द्र आदि भावों से परिचालित होकर ही मनुष्य अपना, अपने समाज का और पूरी मानव जाति का कल्याण कर सकता है और यह सब कुछ हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।

बाजारवाद और उसकी सन्तति उपभोक्तावाद के बढ़ते हुए प्रभाव ने मनाव–समाज को पूरी तरह से अपने चंगुल में फँसा लिया है। मनुष्य दिनों–दिन अपनी आवश्यकताओं का दास बनता जा रहा है। सुबह से शाम तक उसकी दौड़ जीवन के उन साधनों को जुटाने के लिए होती है, जिससे उसका जीवन तथाकथित रूप से सम्पन्न और सुखमय बन सके । पर, ऐसा होता नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों ने इन साधनों की संख्या में इतनी वृद्धि कर दी है कि व्यक्ति सभी को पाये बिना संतुष्ट नहीं होता है, इनके अभाव मे वह स्वयं को दूसरों से हीन समझता है। संतोष की भावना व्यक्ति खोता जा रहा हैः–

''साई इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय,
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय''।

गृहस्थ जीवन की यह साधारण सी कामना अब अर्थहीन हो गयी है। व्यक्ति स्वयं तो सब कुछ पाना चाहता है, लेकिन देने के लिए, दूसरों की मदद के लिए अब न तो वह अपना धन व्यय करना चाहता है और न समय देना चाहता हैः–

'यही पशुवृत्ति है कि आप ही चरे,
वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे।'

मनुष्य के भीतर पशुओं जैसी स्वार्थ भावना को बढ़ावा देने के लिए भी यह भौतिकवाद ही दोषी है। वे गुण जो मनुष्य को पशु से ऊँचा उठाते हैं, जो उसे मनुष्य बनाते हैं, उन्हें फिर से मानव में प्रतिष्ठित करने के लिए साहित्य को ही आगे आना होगा, अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य मनुष्यता के ऊँचे आसन से गिरकर पशुओं से भी गया बीता हो जायेगा और उससे वह मनुष्यता छूट जायेगी जिस पर मुग्ध होकर कविवर पन्त ने लिखा है–

'सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।'

वैज्ञानिक और तकनीकी क्रान्ति के इस युग में हमारे समाज के सम्मुख एक बड़ा खतरा लुप्त होती मानवता अथवा जीवन का मशीनीकरण है, जिसे हमें किसी भी कीमत पर रोकना होगा और इसके लिए हम साहित्य के मुखापेक्षी हैं। साहित्य जीवन के सामान्य सत्य को ही प्रतिबिम्बित नहीं करता बल्कि वह मानव जाति को भविष्य की राह भी सुझाता है।

समाज में बढ़ती हुई हिंसा की प्रवृत्ति, मारामारी, लूट–खसोट आदि ने लोगों के मन में असुरक्षा की भावना का संचार किया है। इसे दूर करने के लिए कवि का सुझाव है–

'शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।'

साहित्यकार समाज की कमियों को दिखाता ही नहीं बल्कि उन पर प्रहार भी करता है। भारत के प्रजातंत्र पर व्यंग्य करते हुए धूमिल लिखते हैं–

'मेरे देश का प्रजातंत्र, माल–गोदाम में लटकी उन बाल्टियों की तरह है,
जिन पर 'आग' लिखा है, पर अन्दर बालू भरा हैं।''

'यह कौन सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है?
कि जिस उम्र में मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है,।
उसी उम्र की मेरी पड़ोसन के चेहरे पर मेरी प्रेमिका के चेहरे सा लोच है।''

समाज की हर विकृति साहित्यकार के सामने बिल्कुल स्पष्ट रहती है, हर समस्या, हर प्रश्न उसके अन्दर एक खलबली सी मचा देता है और वह सबका समाधान अपनी दूरदर्शी, निष्पक्ष और सर्वकल्याण की भावना रखने वाली मेधा से प्रस्तुत करता है। यदि समाज साहित्य का आश्रय ले तो उसकी अनेकानेक समस्याएँ स्वयं सुलझ जाएँगी। समाज का सन्तुलन बना रहेगा। असमानाता, असन्तोष, व्यक्ति–व्यक्ति के बीच की दूरी, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, अकेलेपन की त्रासदी आदि सभी असुविधाजनक और मानव–प्रगति में बाधक स्थितियों से साहित्य ही छुटकारा दिला सकता है। साहित्य एक ऐसे समाज के निर्माण की हमें प्रेरणा देता है जहाँ सभी के लिए अवसर हों, अपनापन हो, आश्रय हो। समाज के सन्दर्भ में साहित्य की भूमिका को कुछ शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। यह क्षेत्र इतना विस्तृत है कि पूरा साहित्य इस परिधि में आ जायेगा जिसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। इतना अवश्य कहना है कि–

'अन्धकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नही है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।।''

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. रामधारी सिंह दिनकरः कुरूक्षेत्र
3. धूमिलः संसद से सड़क तक
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीः हिन्दी साहित्य की भूमिका